ज्ञानेश्वरी

हिंदीमें

बाबुराव भट

(कुमठेकर)

ज्ञानेश्वरी

हिंदीमें अनुवाद

दिवंगत श्री. बाबुराव भट कुमठेकर

श्री बाबूराव कुमठेकर नामसे जाननेवाले परंतु एक गौड़ सारस्वत ब्राह्मण परिवारमें जन्म लेनेवाले एक असामान्य विद्वानका जन्म कर्नाटके उत्तर कन्नड़ जिल्हेमें हलदीपुर नामक गाँवोंमें हुवा था. पिताजी एक देवस्थानके अर्चक थे. इसलिये उनका नाम वास्तवमें बाबूराव भट्ट था. परंतु भारतका स्वातंत्र्य संग्राममें भाग लेते समय उनको गिरफ़्तार करनेके लिये जब पोलीस आये और उनकोहि बाबूराव भट्टके बारेमें पूछा तब उन्होंने सहज उत्तर दिया की उनका नाम कुमठेकर हैं और बाबूराव भट्ट बाहर गये हुवें हैं. ज़रूर हो तो वह मदत कर सकता है जब गांधीजीको यह बात सुननेमें आयी तब वे हँसकर बोले, वाह तो आपसे हम बावुरावको बाबूराव कुमठेकर नामसे संबोधन करेंगे. तबसे बाबूराव भट्ट बाबूराव कुमठेकर हो गये.

बाबुरावजीका संपर्क स्वातंत्र्य संग्राममें इ.स. १९२० से न केवल गांधीजी किंतु विनोबाजी,आचार्य नरेंद्र देव, श्रीप्रकाश, साने गुरुजी, किशोरीलाल मश्रुवाला जैसे महान् पुरुषोंकी निकट संबंध मिला. उनका वास्तव्य साबरमती, वर्धा, हरद्वार आश्रममें हुवा करता था. इ.स. १९२८में उन्होनें ठाणेमें हिंदी शिक्षकभी थे. राहुल संस्कृत्ययन संबंधसे कर्नाटककी संत साहित्य और शरण साहित्य हिंदीमें भाषांतर क़रनेकि प्रेरणा मिलि. इ.स. १९६८में मराठी भाषामें प्रस्तुत ज्ञानेश्वरीका हिंदी में भाषांतर करनेका आशय बाबुरावजीनें सफल होनें लगा. इसमें ज्ञानेश्वरीका लयबद्ध भाषांतरके साथ भगवद्गीताका लयबद्ध भाषांतरभी मिलता है.

ज्ञानेश्वरी छपनेके बाद उसको बिकनेकि काम बाबुरावजीको संभव नहीं था. अनेकोंने मदत क़रनेकि आश्वासन तो दिये, परंतु आश्वासन फलदूप नहीं हुवा. सब प्रतियाँ विनामूल्य देनेमें आये. वही महान् ग्रंथ अब वेब सायटसे दीया है.

******

ज्ञानेश्वरी

१

अर्जुनविषादयोग

ॐ नमो श्री आद्य । वेदप्रतिपाद्य ।
जय जय स्वयंवेद्य । आत्मरूप ॥१॥

देव तू ही श्री गणेश । सकल-मति प्रकाश ।
कहे निवृत्तिका दास । सुनियेजी ॥२॥

शब्द-ब्रह्म यह अशेष । वही है जो मूर्ति सुवेष ।
वहां वर्ण भी है निर्दोष । सजाया जो ॥३॥

स्मृति ही है अवयव । रेखायें अंगके भाव ।
लावण्य रूप वैभव । अर्थ शोभा ॥४॥

अष्टादश जो पुराण । वही हैं मणि-भूषण ।
पद पद्धति कोंदण । प्रमेय-रत्नका ॥५॥

पदबंध है वसन । रंगाया अति महीन ।
साहित्य शोभायमान । किनारी है ॥६॥

मानो है काव्य-नाटक । सोचनेसे स-कौतुक ।
पदकी क्षुद्रघंटिका । अर्थ-ध्वनि ॥७॥

अनेक तत्वोंका निरूपण । उसका नैपुण्य विलक्षण ।
उचित वचन सुलक्षण । दीखे रत्न-सम ॥८॥

व्यासादिकोंका शुद्धज्ञान। शोभता मेखला समान।
उसकी दिशा है महीन। झलकती सदा ॥९॥

कहलाते जो षड्दर्शन। जैसे भुजदंड महान।
तभी है असंगत-पूर्ण। आयुध करमें ॥१०॥

तर्क ही है फरशु। नीति-भेद अंकुश।
वेदांत महारस। शोभता मोदक ॥११॥

एक हाथमें है दन्त। स्वभावसे ही खंडित।
जो बौद्धमत संकेत। वार्तिकोंका ॥१२॥

सहज सत्कारवाद। है पद्मकर वरद।
धर्मप्रतिष्ठामें सिद्ध। अभयहस्त ॥१३॥

विवेकवंत सुविमल। वही सुंड-दंड़ सरल।
है परमानंद केवल। महासुखका ॥१४॥

अजी संवाद है दशन। जो है समता शुभ्रवर्ण।
देव उन्मेषसूक्ष्मेक्षण। विघ्नराज ॥१५॥

पूर्व उत्तर मीमांसा मान। उसके हैं दो श्रवणस्थान।
मुनिमन बोधामृत पान। करते भ्रमरसे ॥१६॥

प्रमेयप्रवालसुप्रभ। द्वैत अद्वैत हैं निकुंभ।
तुल्यबल हैं जो सुलभ। मस्तक पर ॥१७॥

उस पर हैं दस उपनिषद। जिसके उदार ज्ञान-मकरंद।
मुकुट पर जो सुमन-सुगंध। सुहाते हैं ऐसे ॥१८॥

अकार चरण युगल। उकार उदर विशाल।
मकार है महामंडल। मस्तकाकार ॥१९॥

जहां ये तीनो हुए एक। शब्दब्रह्म प्रकटा नेक।
गुरु-कृपासे जाना देख। यह आदिबीज ॥२०॥

सरस्वती वंदन—

अजी अभिनव वाग्विलासिनी। जो चातुर्य-अर्थ-कलाकामिनी।
वह है शारदा विश्व-मोहिनी। नमस्कार मेरा ॥२१॥

गुरुवंदन —

मेरे हृदयमें श्री सद्‌गुरु। जिसने तारा संसार-पूर।
इससे है विशेष आदर। विवेकपे ॥२२॥

जैसे अंजन पड़ा आखोंमें। फूटे नव-अंकुर दृष्टिमें।
लगा टोह दस दिशाओंमें। महानिधिका ॥२३॥

अथवा चिंतामणि आया करमें। सदा विजयवृत्ति बसी मनमें।
वैसे हूं पूर्ण-काम निवृत्तिमें। कहता ज्ञानदेव ॥२४॥

इसीसे श्रीगुरुको भजा जानके। उससे ही सतत-कृतार्थ होके।
सींचनेसे जैसे मूलको वृक्षके। खिलते शाखा-पल्लव ॥२५॥

त्रिभुवनके तीर्थ जिसमें। डूबते हैं सदा सागरमें।
या अमृतके रसास्वादमें। आते रस सकल ॥२६॥

वैसे आगे आगे जो रहता है। नमन किया जिसे श्रीगुरु है।
अभिलषित मनकी रुचि है। पूर्ण करता जो ॥२७॥

महाभारतका वर्णन—

सुनो अब कथा जो गहन। सब कौतुकका जन्मस्थान।
अथवा अभिनव उद्यान। विवेक तरुका ॥२८॥

सभी सुखोंका जो है आदि। सब तत्वोंका महोदधि।
नवरसोंका जो सुधाब्धि। है परिपूर्ण ॥२९॥

परमधाम प्रकट। विद्याओंका मूलपीठ।
सभी शास्त्रोंमें जो श्रेष्ठ। अशेषका ॥३०॥

सभी धर्मोंका नैहर। सज्जनोंका है जिव्हार।
लावण्य-रत्न भांडार। शारदाका ॥३१॥

या प्रकटी है त्रिभुवनमें। भारती स्वयं कथा-रूपमें।
स्फुरण होके व्यास-चित्तमें। जो है महामति ॥३२॥

या है यह काव्यराज। ग्रंथ-गुरुत्वका ताज।
रसमें रसत्व आज। आया उमड़ ॥३३॥

सुनो एक और महता। शब्दोंमें आयी शास्त्रीयता।
बड़ी महाबोध मृदुता। इस ग्रंथसे ॥३४॥

दक्ष हुआ यहां चातुर्य । आया है प्रमेयमें माधुर्य ।
सुखका हुआ है ऐश्वर्य । परिपुष्ट ॥३५॥

माधुर्यमें मधुरता । श्रृंगारमें सुरेखता ।
प्रथाओंकी सुरूपता । दीखती यहां ॥३६॥

कलामें आयी है कुशलता । वैसे ही पुण्यमें तेजस्विता ।
नष्ट हुये दोष स्वभावता । जनमेजयके ॥३७॥

क्षणभर देखनेसे लगता । रंगमें बढ़ आयी सु-रंगता ।
गुणमें अंकुरायी सुजनता । सामर्थ्य रूप ॥३८॥

भानु-तेजसे धवल । त्रिलोक दीखे उज्वल ।
व्यास-मतिके चंगुल । शोभता विश्वपे ॥३९॥

सु-क्षेत्रमें पड़ा हुआ बीज । अपने आप फैला सहज ।
भारतमें उमड़ा है तेज । पुरुषार्थका ॥४०॥

नगरमें बसा नागरिक । रहता है जैसा सविवेक ।
वैसे व्यासोक्तिसे हुआ नेक । सभी विश्व ॥४१॥

अथवा तारुण्यारंभमें जैसे । खिलती लावण्य कलिका वैसे ।
आता अंगनाके अंगागमेंसे । नित नव बहार ॥४२॥

या वसन्तागमनसे उद्यानमें । आता है बहार प्रति पल्लवमें ।
सौंदर्यकी खान खुलती वनमें । वैसे ही जान ॥४३॥

अथवा घनीभूत सुवर्ण । देखनेमें है जो साधारण ।
दीखे भूषण असाधारण । उसी भांति ॥४४॥

व्यासोक्तिके अलंकारार्थ । इच्छित सौंदर्य प्राप्त्यर्थ ।
इतिहास है आश्रयार्थ । आया भारतके ॥४५॥

या अपनी प्रतिष्ठाके लिये । अल्पत्वको है स्वीकार किये ।
पुराण आख्यान रूप लिये । आये भारतमें ॥४६॥

तभी जो महा-भारतमें नहीं । नहीं है त्रिभुवनमें कहीं ।
कहते हैं सब ही तभी यही । व्यासोच्छिष्ट जगत्त्रय ॥४७॥

जगतमें कथा सरस ऐसी । परमार्थकी है जन्म-भूमि-सी ।
मुनि वाणिसे अमृतमय-सी । सुनी जनमेजयने ॥४८॥

अद्वितीय औ' उत्तम । पवित्र्यैक निरुपम ।
परम मंगलधाम । सुनिये अब ॥ ४९ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता महिमा—

भारत कमल पराग । गीताख्यानका है प्रसंग ।
कहते हैं स्वयं श्रीरंग । अर्जुनसे ॥ ५० ॥

अथवा शब्द ब्रह्माब्धि । मथ लिया व्यास-बुद्धि ।
निचोड़ है निरवधि । नवनीत यह ॥ ५१ ॥

फिर ज्ञानाग्नि-संपर्कसे । तपाया तीव्र विवेकसे ।
हुवा पूर्ण परिपाकसे । सुगंधित घृत ॥ ५२ ॥

विरक्त उसकी अपेक्षा करते । संत उसका अनुभव करते ।
तथा पारंगत रमते रहते । सोऽहं भावमें ॥ ५३ ॥

सुनना उसे भक्तिमें । वंद्य है जो त्रैलोक्यमें ।
कहा है भीष्म-पर्वमें । श्रीहरिने ॥ ५४ ॥

उसको श्रीमद्भगवद्गीता कहते । ब्रह्मेश उसकी प्रशंसा करते ।
सनकादिक हैं सेवन करते । अति आदरसे ॥ ५५ ॥

जैसे शरद्चंद्रकलामें । होते सुधाकण साथमें ।
उठाते कोमल चोंचमें । चकोर-शावक ॥ ५६ ॥

उस पर भी सुन श्रोता । प्रतीत करो यह कथा ।
चितमें अति चेतनता । लाकरके तुम ॥ ५७ ॥

शब्दोंके बिन है बोलना । इंद्रियोंके बिन भोगना ।
बोलके बिन उलझना । प्रमेयोंसे ॥ ५८ ॥

भ्रमर जैसा पराग ले जाते । किंतु कमल दल न जानते ।
इस भांति अनुभव करते । ग्रंथको यहां ॥ ५९ ॥

अथवा अपना स्थान नहीं छोडते । आलिंगन करते चद्रोदय होते ।
ऐसा प्रेम भोग भोगना है जानते । कुमुदिनि समान ॥ ६० ॥

ऐसी ही गंभीरतासे । स्थिर अन्तःकरणसे ।
जाने जो संपन्नतासे । युक्त मन हो ॥ ६१ ॥

जो हैं अर्जुनके साथ । बैठ सकते हैं सन्त ।
कृपया सुने ये बात । दत्त-चित्त हो ॥ ६२ ॥

श्रोताओंको नमन—

आपका हृदय है अति कोमल । तभी निकले हैं ये प्रीतिके बोल ।
वैसे मेरी विनय अति सरल । चरण युगलमें ॥ ६३ ॥

जैसे स्वभाव माता-पिताका । तुतलाती बोली सुननेका ।
सानंद अपने आपत्यका । वैसे ही यहां ॥ ६४ ॥

वैसे किया मेरा स्वीकार । सज्जनोंने अपनाकर ।
कम अधिक क्षमाकर । उपेक्षासे ॥ ६५ ॥

कविकी नम्रता—

किंतु दूसरे ही अपराधका । क्षमा प्रार्थी हूं मैं यहां आपका ।
गीतार्थ कथनके प्रयासका । सुनियेजी ॥ ६६ ॥

न सोचकर अपनी क्षमता । चित्त जो यह साहस करता ।
जैसे भानु--तेजमें चमकता । खद्योत वैसे ॥ ६७ ॥

अथवा जैसे टिटहर । सुखाना चाहता सागर ।
वैसे अल्पज्ञ यह भार । उठाता है ॥ ६८ ॥

यदि है आकाश लपेटना । उससे अधिक बडा होना ।
ऐसा है यह मेरा करना । विचारान्तमें ॥ ६९ ॥

ऐसी है गीतार्थकी महता । शंभु स्वयं कथन करता ।
प्रश्न करती भवानी माता । चमत्कृत होके ॥ ७० ॥

शिव कहते हैं उमासे । अथाह तव रूप जैसे ।
भगवद्गीता तत्व वैसे । नित्य नूतन ॥ ७१ ॥

यह है वेदार्थ सागर । उस निद्रस्थका है घोर ।
कहता यह सर्वेश्वर । प्रत्यक्ष रुपसे ॥ ७२ ॥

ऐसा है जो अगाध । भ्रमते जहां वेद ।
वहां मैं मतिमंद । कहूंगा क्या ॥ ७३ ॥

यह अपार कैसे लपेटेगा । महातेजको कैसे उजालेगा ।
आकाश कैसे मुट्ठीमें कसेगा । यह क्षुद्र जीव ॥ ७४ ॥

गुरु कृपाकी महिमा—

किंतु यहां है एक आधार । उसीका है मुझे महा-धीर ।
अनुकूल है श्रीगुरुवर । कहता ज्ञानदेव ॥ ७५ ॥

नहीं तो मैं अति-मूर्ख । वैसे ही है अविवेक ।
सन्त-कृपाका दीपक । करता सोज्वल ॥ ७६ ॥

हो जाता है कनक लोहेका । सामर्थ्य है यह पारसका ।
मृतको जीवित करनेका । अमृतमें जैसे ॥ ७७ ॥

प्रकटती जब सरस्वती । गूंगेको भी है वक्ता करती ।
केवल वस्तु - सामर्थ्य-शक्ति । अचरज नहीं ॥ ७८ ॥

मैं गुरुकी कठपुतली हूं—

कामधेनु है प्रसन्न जिसे । अप्राप्य नहीं है कछु उसे ।
नहीं तो प्रवृत्त होता कैसे । इस कार्यमें मैं ॥ ७९ ॥

अपूर्णको पूर्ण कर लेना । अधिकको न्यून मान लेना ।
ऐसे ही मुझे संभाल लेना । विनय है यह ॥ ८० ॥

अजी ! आप अब सुनियेगा । आप कहें सो तुतलाऊंगा ।
नचावे वैसा ही मैं नाचूंगा । सूत्रधार जो ॥ ८१ ॥

वैसे मैं अनुगृहित । साधुओंसे निरूपित ।
आपसे है अलंकृत । अपनत्वमें ॥ ८२ ॥

गुरु प्रसादकी सूचना —

श्रीगुरु कहते अब । न कह तू यह सब ।
कर ग्रंथका प्रारंभ । तुरंत ही ॥ ८३ ॥

आज्ञासे निवृत्तिका दास । कहता हो परमोल्हास ।
देके मनको अवकाश । सुनो अब ॥ ८४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

मोहग्रस्त धृतराष्ट्रकी जिज्ञासा—

मोहित है जो पुत्र-स्नेहसे। धृतराष्ट्र पूछे संजयसे।
वृत्तांत कहो अति त्वरासे। कुरुक्षेत्रका ॥ ८५ ॥

कहते जिसे धर्म-क्षेत्र। वहां मेरे औ' पांडुपुत्र।
हुये युध्दार्थ जो एकत्र। करते हैं क्या ? ॥ ८६ ॥

तभी उन्होने परस्पर। किया क्या इस अवसर।
कहो जी अब सविस्तर। मुझसे तुम ॥ ८७ ॥

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

दुर्योधन उवाच

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा

पवित्र कुरु-क्षेत्रपे हमारे और पांडुके।
लड़ायीके लिये आये हुवा क्या कह संजय ॥ १ ॥

संजयने कहा

निहारी पांडवी-सेना सजी कौरवने जब।
तब जा गुरुके पास उनसे बात ये कहीं ॥ २ ॥

दुर्योधनने कहा

गुरुजी आपका शिष्य प्रवीण द्रुपदात्मज।
रचा जो इसने व्यूह देखें पांडव सैन्यका ॥ ३ ॥

युद्धवर्णन--

"सुनो" तब वह संजय बोला। पांडवी सेनाने किया हमला।
जैसे महा - प्रलयमें है फैला। कृतांत मुख ॥ ८८ ॥

सेना मानो महापूर जैसे। चढ आती है जो उग्रतासे।
उबलता कालकूट जैसे। रोके कौन ? ॥ ८९ ॥

अथवा जैसे वड़वानल भड़का। उसको साथ मिला प्रलय-वातका।
उठा जो शोषण करके सागरका। आकाश तक ॥ ९० ॥

ऐसा वह दल दुर्धर। व्यूह रचनामें चतुर।
जिससे अति भयंकर। दीखता है ॥ ९१ ॥

जिसे देखकर दुर्योधन। उपेक्षा करके अनमन।
जैसे न गिनता पंचानन। गज-समूहको ॥ ९२ ॥

गया वह गुरुके पास। बात कही है स-उल्हास।
उछला सेनाका उल्हास। देखो पांडवोंकी ॥ ९३ ॥

गिरि-दुर्ग चलते हैं जैसे। विविध व्यूह बनते वैसे।
रचा अति कुशलतासे। द्रुपद-पुत्रने ॥९४ ॥

किया जो आपने ही शिक्षित। विद्यासे किया है ज्ञानवंत।
रचा सैन्य-सिंह सुशोभित। उसने देखें ॥ ९५ ॥

अत्र शूरा महेश्वासा भीमार्जुन समायुधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥ ४॥

और भी हैं असाधारण। शस्त्रास्त्रमें हैं जो प्रवीण।
क्षात्र-धर्ममें हैं निपुण। अन्यवीर ॥ ९६ ॥

जो हैं बल प्रौढ़ि पौरुषमें। भीम अर्जुनकी समतामें।
कहूंगा मैं इस प्रसंगमें। नाम उनके ॥ ९७ ॥

यहां युयुधानु सुभट। आया वह वीर विराट।
वैसे ही महारथी श्रेष्ठ। द्रुपदराज ॥ ९८ ॥

यहां शूर धनुर्धारी जैसे हैं भीम अर्जुन।
महारथी जो द्रुपद विराट नृप सात्यकी ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवा ॥ ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

चेकितान धृष्टकेतु । काशीश्वर है विक्रांत ।
उत्तमौजा नृपानाथ । तथा शैब्य है ॥ ९९ ॥

अजी यहां कुंतिभोज है । युधामन्यु भी आगया है ।
पुरुजित् आदि राजा हैं । सबको देखलें ॥ १०० ॥

यह सुभद्रा हृदय नंदन । पौरुषमें मानो नव अर्जुन ।
हैं अभिमन्यु कहे दुर्योधन । गुरु द्रोणसे ॥ १ ॥

वैसे ही द्रौपदी कुमार । सभी महारथी वीर ।
मैं नहीं जानु हैं अपार । यहां वीर लोग ॥ २ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान् निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥
भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपस्य समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

शूर है जो धृष्टकेतु कास्य औ' चेकितान भी ।
पुरुजित् कुंतिभोजीय तथा शैब्य नरोत्तम ॥ ५ ॥

वीर हैं उत्तमौजा भी युधामन्यु पराक्रमी ।
सौभद्र और ये पुत्र द्रोपदीके महारथी ॥ ६ ॥

अपने पक्षके जो हैं सेनाके मुख्य नायक ।
कहता हूं सुने आप आचार्य चित्त देकर ॥ ७ ॥

स्वयं आप तथा भीष्म यशस्वी कृप कर्ण हैं ।
सौमदत्ति अश्वत्थामा जयद्रथ विकर्ण भी ॥ ८ ॥

अब अपने दलके नायक। हैं जो दृढ वीर तथा सैनिक।
सुनिये सभी ध्यान पूर्वक। कहता हूं मैं ॥ ३ ॥

आप तथा अन्य जो हैं। मुख्य रुपसे दीखते हैं।
यह केवल संक्षेप है। कहता हूं सुनिये ॥ ४ ॥

यह है भीष्म गंगा नंदन। प्रतापमें हैं भानु समान।
हैं जो रिपु–गज–पंचानन। कर्ण महावीर ॥ ५ ॥

इसमें एकेकका मनो--व्यापार। करता है विश्वोत्पत्ति औ' संहार।
यह कृप आचार्य है महावीर। अपर्याप्त हैं क्या ? ॥ ६ ॥

यह विकर्ण भी वीर है। यह अश्वत्थामा खड़ा है।
हियमें जिसका डर है। कृतांतके भी ॥ ७ ॥

सौमदत्ति है समितिंजय। करने आये मेरी विजय।
धाता न जाने जिनका शौर्य। ऐसे हैं अनेक ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युध्दविशारदाः ॥ ९ ॥

जो शस्त्र–विद्या पारंगत। तथा मंत्रावतार मूर्त।
अस्त्रमात्रके जो अभ्यस्त। पूर्ण रुपसे ॥ ९ ॥

अप्रतिम जो मल्ल-जगतमें। पूर्ण प्रताप जिनके तनमें।
परंतु सर्व-प्राण जो मुझमें। लगाया है ॥ ११० ॥

जैसे है पतिव्रताका हृदय। पति बिन न स्पर्शे अन्य काया।
वैसे सर्वस्व है मुझको दिया। इन सुभटोंने ॥ ११ ॥

हमारे कार्य सिध्यर्थ। इन्होने दिया जीवित।
ऐसे हैं ये स्वामि-भक्त। निस्सीम ॥ १२ ॥

हैं ये युध्द कलामें निपुण। यश प्राप्तिमें दक्ष महान।
क्षात्र नीतिका है जनन। हुआ इनसे ॥ १३ ॥

अनेक दूसरे वीर मेरे हित सभी तज।
सजे हैं सब शस्त्रोंसे रणमें दक्ष जो सदा ॥ ९ ॥

ऐसे सर्वांग पूर्ण वीर । अपने दलमें अपार ।
गणनाका नहीं है पार । कहें कितने ॥ १४ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

सब क्षत्रियमें श्रेष्ठ । विश्व विख्यात सुभट ।
भीष्मने सजाया पीठ । सेनापतिका ॥ १५ ॥

इन्होंने अपने सामर्थ्यसे । रचाया सेनाके दुर्ग जैसे ।
इनके सम्मुख विश्व जैसे । है कःपदार्थ ॥ १६ ॥

पहले ही है महासागर । सबको ही है वह दुस्तर ।
फिर वड़वानल प्रखर । विराजा वहां ॥ १७ ॥

या प्रलय-वन्हि-महावात । दोनोंका हुआ समान साथ ।
ऐसे सैन्यका है गंगा-सुत । सेनापति बना ॥ १८ ॥

इससे अब कौन लड़ेगा । पांडव दल ओछा पड़ेगा ।
कहिये उसका क्या चलेगा । इनके सम्मुख ॥ १९ ॥

भीमसेन बडा बोथा । बना है जो सेनानाथ ।
ऐसा कह कर बात । छोडी उसने ॥ १२० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

पुनर्रापि बोले दुर्योधन । सुनो बात तुम सभी जन ।
सैन्य सहित हो सावधान । रहे अपना ॥ २१ ॥

जिसकी जो अक्षोहिणी सेनामें । जिसके साथ भिडेगी रणमें ।
सन्नध्द करो नियत स्थलमें । महारथीके सम्मुख ॥ २२ ॥

अपार अपनी सेना जो है रक्षित भीष्मसे ।
थोडीसी उनकी सेना जिसका भीम रक्षक ॥ १० ॥

मिला जो जिनको स्थान डटके उस स्थानपे ।
करेंगे भीष्मकी रक्षा सब ही सब ओरसे ॥ ११ ॥

सेना अपनी संभालना। भीष्मके आधीन रहना।
द्रोणसे कहा जी! देखना। आप यह सकल ॥ २३ ॥

एककी रक्षा करना। मैं ही हूं ऐसा मानना।
यही सच्चा है अपना। दल भार सारा ॥ २४ ॥

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

राजाकी इस बातसे। भीष्मने भी संतोषसे।
किया जो महावेगसे। सिंहनाद ॥ २५ ॥

गूंजा जो वह अद्भुत। दोनो सेनामें आद्यंत।
प्रतिध्वनि है ध्वनित। चहूं दिशामें ॥ २६ ॥

उस प्रतिध्वनिके साथ। वीरवृत्तिसे हो ज्वलंत।
भीष्मदेवने भी घोषित। किया दिव्य शंख ॥ २७ ॥

दोनो ही नाद मिले घोर। मानो हुए त्रिलोक बधिर।
जैसा पड़ा हो टूट कर। आकाश सर्व ॥ २८ ॥

कंपित हुआ अंबर। उछल उठा सागर।
प्रक्षुभित चराचर। भयसे महा ॥ २९ ॥

महा घोषसे उठे गजर। जिससे भरे गिरिकंदर।
हुई सेना सब रणातुर। स्फुरित हो महा ॥ १३० ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

बढाने उनका हर्ष करके सिंह-गर्जन।
प्रतापी वृद्ध दादाने बजाया शंख जोरसे ॥ १२ ॥

तब है शंख भैर्यादि रणवाद्य विचित्र जो।
बजे जब सभी साथ हुवा शब्द भयंकर ॥ १३ ॥

रणवाद्य बजे जो एकत्र। भय फैलाते हुये सर्वत्र।
आया हो जैसे प्रलय सत्र। इसी क्षणमें ॥ ३१ ॥

बज उठे बड़े ढ़ोल। शंख झांज जो शिथिल।
भयंकर कोलाहल। सुभटोंका ॥ ३२ ॥

ताल ठोकते आवेशसे। गोहारने स्वेश द्वेषसे।
हाथी घोडे हैं उन्मादसे। अनावर ॥ ३३ ॥

कायरोंकी वहां क्या बात। काच दिल गये उडत।
कांप उठा स्वयं कृतांत। खडा न रहा ॥ ३४ ॥

कितनोंके बैठे हृदय। कितनोंका प्राण ही जाय।
वीरोंकी कांपती है काया। उस नादसे ॥ ३५ ॥

ऐसा भयंकर रण गर्जन। सुन अकुलाया चतुरानन।
प्रलय आ गया क्या इसी क्षण। बोले देव ॥ ३६ ॥

यह बात हुयी स्वर्गमें। आक्रोश देखके रणमें।
यहां है पांडव दलमें। हुआ क्या? ॥ ३७ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंस्दने स्थितौ।
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

रथ था जो विजय-गर्भका। या भांडार था महातेजका।
और था चार श्वेत अश्वोंका। गरुड समान ॥ ३८ ॥

आया जैसा मेरु पंखोंका। वैसा आया रथ जो बांका।
छितराते दिव्य शोभाका। प्रकाश सर्वत्र ॥ ३९ ॥

अश्व चालक स्वयं भगवान। वैकुंठका जो स्वामी महान।
उस रथका है गुणवर्णन। करना ही क्या ॥ १४० ॥

ध्वज स्तंभ पर वानर। जो है मूर्तिमान शंकर।
सारथी स्वयं शांर्गधर। अर्जुनका ॥ ४१ ॥

यहां धवल घोडोंके महान रथमें बसे।
कृष्ण अर्जुनने फूंके अपने दिव्य शंख भी ॥ १४ ॥

देखो नवल उस प्रभुका। अद्‌भुत प्रेम है जो भक्तोंका।
सारथ्य करता है पार्थका। विश्वपति ॥ ४२ ॥

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः।
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः॥ १५॥

पीछे किया है भक्तको। आगे किया अपनेको।
फूंका है पांचजन्यको। लीलासे तब ॥ ४३ ॥

उसका घोष है भयंकर। गूंजत रहा जो चहूं ओर।
जैसे निगलता दिनकर। उगते ही नक्षत्र ॥ ४४ ॥

इसमें डूब गया गर्जन। कौरव दल-रव महान।
जिससे विश्व-कंपायमान। था क्षण पूर्व ॥ ४५ ॥

इसके क्षणकाल बाद। हुआ जो गहरा निनाद।
देवदत्ताका गूंजा नाद। अर्जुनके ॥४६ ॥

दोनो शब्द प्रचंड। गूंजे जब अखंड।
मानो टूटा ब्रह्मांड। शतधा होके ॥ ४७ ॥

उबल उठा तब वृकोदर। जैसे खौला हुआ महासागर।
किया शंखनाद जो भयंकर। पौंड्र नामके ॥ ४८ ॥

अनंतविजयं राजा कुन्ती पुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोष मणिपुष्पकौ ॥ १६॥

गरजा महाप्रलय जलधर। गूंज उठा शब्द अतीव गंभीर।
तब अनंत विजय युधिष्ठिर। बजाने लगे ॥ ४९ ॥

पांचजन्य हृषीकेश पार्थने देवदत्तको।
बजाया भीमने पौंड्र शंखको बलसे महा ॥ १५ ॥

फूंका अनंतविजय शंख भी धर्मराजने।
वैसे ही माद्रि पुत्रोंने सुघोष मणिपुष्पक ॥ १६ ॥

तथा नकुलने सुघोष। सहदेव मणिपुष्पक।
जिससे हुआ है आतंक। चहूं ओर॥ ५०॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥ १७॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान् दध्मु पृथक् पृथक्॥ १८॥

वहां भूपति थे अनेक। द्रुपद द्रौपदेयादिक।
और काशीपति देख। महाबाहू जो॥ ५१॥

तथा अर्जुनका सुत। सात्यकि अपराजित।
धृष्टध्युम्न नृपनाथ। औ' शिखंडी भी॥ ५२॥

विराट आदि नृपवर। हैं जो सेनाके मुख्य वीर।
अनेक शंख निरंतर। बजाये उन्होंने॥ ५३॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्॥ १९॥

जिसका हुआ महा गर्जन। विकल शेष-कूर्म महान।
धरणी भारसे हो बेभान। लगे खिसकने॥ ५४॥

हुआ जो ब्रह्मांड डांवाडोला। मेरु मंदार हुये चंचल।
उछल उठा सागर जल। कैलासपर॥ ५५॥

उलटता क्या पृथ्वीतल। आकाश होगा डांवाडोल।
टूटते हैं तारे सकल। ऐसा लगा॥ ५६॥

काशीराज धनुर्धारी शिखंडी भी महारथी।
विराट और सेनानी अपराजित सात्यकी॥ १७॥

द्रुपद द्रौपदी पुत्र अजानु अभिमन्युने।
फूंके हैं सबने शंख अपने भिन्न भिन्न जो॥ १८॥
उस गर्जनसे टूटा कौरवोंका हृदय ही।
भरके भूमि आकाश गरजा जो भयंकर॥ १९॥

यह सब सृष्टि गयी रे गयी। देवोंको निराधार स्थिति आयी।
ऐसी बडी हीगड़बडी हुयी। सत्यलोकमें ॥ ५७ ॥

दिनमें ही रुका भास्कर। जैसै प्रलयका प्रकार।
जिससे हुआ हाहाकार। त्रिभुवनमें ॥ ५८ ॥

तब हुआ आदि पुरुष विस्मित। कहता होता क्या अब विश्व-अंत।
किया है लोप वह रव अद्भुत। स-संभ्रम ॥ ५९ ॥

इससे हुआ है विश्वका रक्षण। नहीं तो आया था प्रलयका क्षण।
शांत हुआ शंख ध्वनि विलक्षण। कृष्णार्जुनका ॥ १६० ॥

यदि हुआ वह गर्जन शांत। फिर भी रहा गूंजत सतत।
जिससे रण भूमिमें है हत। हुआ कौरवदल ॥ ६१ ॥

जैसे गज समूहके अंदर। सिंह करता लीलासे संहार।
वैसे टूटे हैं हृदय गव्हर। कौरव दलके ॥ ६२ ॥

जब वे यह गूंजन सुनते। उनके हृदय सब कांपते।
वे सब परस्पर हैं कहते। सावधरे सावध ॥ ६३ ॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥

सेनाके पराक्रमी वीर। महारथी औ' महाशूर।
उन्होंने दिया पुनः धीर। अपनी सेनाको ॥ ६४ ॥

क्षोभसे हुई हैं लड़नेमें सिद्ध। अत्युत्साहसे उछली हो सन्नध्द।
सेनाका क्षोभ देख हुआ है विद्ध। लोकत्रय सब ॥ ६५ ॥

बाणोंका वर्षा धनुधर। करते हैं जो निरंतर।
बरसते हैं जलधर। प्रलय कालके ॥ ६६ ॥

फिर सीधा खडा सारा कुरु सैन्य व्यवस्थित।
चलते हैं अभी शस्त्र इतनेमें कपिध्वज ॥ २० ॥

उल्हसित अर्जुनका सेनावलोकन–

देखकर वह अर्जुन। होकर उल्हसित मन।
लगाये उत्सुक नयन। सेनापर ॥ ६७॥

संग्राममें सब सावधान। खडे सर्वत्र कौरव जन।
लीलया लिये तीर कमान। पार्थने तब ॥ ६८॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
अर्जुन उवाच
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापयमेऽच्युत ॥ २१॥

पार्थने की कृष्णसे प्रार्थना। प्रभु मेरे रथको हांकना।
बीचमें वह खड़ा करना। दोनों दलके ॥ ६९॥

यावदेतान् निरिक्षेऽहं योध्दुकामानवस्थितान्
कैर्मयासह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्रसमागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुध्देर्युध्दे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

तब मैं क्षण एक। सब वीर सैनिक।
देखूंगा ये अशेष। जो हैं झुंजार ॥ ७०॥
यहां सभी जो ये आये हैं। मुझे लडना किससे है।
मुझको यह देखना है। इसीलिये ॥ ७१॥

हाथमें धनुष्य लेके बोला कृष्णसे वाक्य ये।

अर्जुनने कहा

दोनों सेना मध्य देव मेरा रथ खडा कर ॥ २१ ॥
देखूंगा मुझसे कौन करता युद्ध कामना।
रण-संग्राममें आज किससे जूझना मुझे ॥ २२ ॥
जुझावू वीर जो सारे देख लेता यहां सभी।
यहां उस कुबुद्धिके करना चाहते प्रिय ॥ २३ ॥

यहां हैं सारे कौरव। आतुर जो दुःस्वभाव।
मारते हैं हाथ पांव। पुरुषार्थ हीन ॥ ७२ ॥

करते हैं ये युध्द कामना। न जाने स्थिरतासे लड़ना।
सुनोजी संजयका कहना। अब राजासे ॥ ७३ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥

पार्थका कर शब्द श्रवण। रथको खडा किया तत्क्षण।
दोनों दलके बीच समान। श्रीकृष्णने तब ॥ ७४ ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरुनिति ॥ २५ ॥

यहां भीष्म-द्रोणादिक। आत्मीय जन सम्मुख।
अन्य नृपति अनेक। खडे हैं जो ॥ ७५ ॥

यहां स्थिर कर रथ। देखता रहा है पार्थ।
सेना समूह समस्त। उमंगसे ॥ ७६ ॥

कहता है देव! देख देख। हैं ये कुलगुरु अशेष।
विस्मय हुआ क्षण एक। सुन श्रीकृष्ण ॥ ७७ ॥

कृष्ण बोले मनमें अपने। इसके मनका कौन जाने।
मनमें सोचा क्या है इसने। अचरज है ॥ ७८ ॥

उसने किया भावी अनुमान। हृदयस्थको है सबका ज्ञान।
किंतु रहा उस समय मौन। कुछ न बोल ॥ ७९ ॥

संजयने कहा

यह अर्जुनका वाक्य सुन श्रीकृष्ण शीघ्र ही।
मध्यमें उन सैन्योंके लाया उत्तम जो रथ ॥ २४ ॥

फिर निहारके ठीक भीष्म द्रोणादि जो नृप।
कहता है जुटे पार्थ देखो कौरव तू सब ॥ २५ ॥

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा ॥ २६ ॥

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान् समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥ २७ ॥

तब वहां पार्थ सकल। पित्र पितामह केवल।
गुरुबंधु सखा मातुल। देखने लगा ॥ ८० ॥

इष्ट मित्र आप्त। पुत्रादि समस्त।
आये हैं युध्दार्थ। सेनामें सब ॥ ८१ ॥

सुन्हदजन श्वशुर। अन्य भी हैं सखा वीर।
पुत्र पौत्रादि कुमार। धनुर्धर जो ॥ ८२ ॥

जिन्होने उपकार किये थे। संकटमें जो काम आये थे।
श्रेष्ठ कनिष्ठ सभी जन थे। वहां सारे ॥ ८३ ॥

कुल सर्वस्व दोनो दलमें। आया था जो लडने रणमें।
देखा सब उस समयमें। पार्थने वहां ॥ ८४ ॥

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्

मनमें वहां गडबड हुयी। सहज भावसे करुणा आयी।
अपमानसे वीरवृति गयी। उसको छोड़ ॥ ८५ ॥

होती है जो उत्तम कुलकी। मूर्ति मानो गुण लावण्यकी।
वह नहीं रहती अन्याकी। तेजस्वितासे ॥ ८६ ॥

अर्जुनकी करुणा–

नवीनाके चावसे है जैसे। कामासक्त हठता पत्नीसे।
चसका लगता है भ्रमसे। वैसेही ॥ ८७ ॥

तब अर्जुनने देखा खडे हैं सिद्ध हो कर।
दादा चाचा तथा मामा सगे संबंधि औ' सखा ॥ २६ ॥
गुरुबंधु पुत्र पौत्र खडे स्वजन हैं सभी।
सबको देख कौंतेय रणमें जो स्वबांधव ॥ २७ ॥

अथवा तपोबलसे ऋध्दि। पाकर भ्रंश होती है बुध्दि।
फिर उसे विरक्ति औ' सिध्दि। भूल जाती ॥ ८८॥

ऐसा हुआ वहां अर्जुनका। गया पुरुषत्व जो उसका।
दिया दान अन्तःकरणका। करुणाको ॥ ८९ ॥

वर्णनेसे जैसे मंत्रज्ञमें। भूत संचार होता तनमें।
वैसे अर्जुन महामोहमें। डूब गया ॥ १९० ॥

जिससे गया उसका धैर्य। द्रवने लगा उसका हिय।
द्रवता जैसा चांदनीमें काय। सोमकांतका ॥ ९१ ॥

वैसा ही है वह पार्थ। अतिस्नेहसे मोहित।
कहता सखेद बात। अच्युतसे ॥ ९२ ॥

अर्जुन उवाच

दृष्टवेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥ २८ ॥

सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

गांडीवं स्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

कहता वह सुनो कृष्ण। यहां गोत्र वर्ण संपूर्ण।
करने आया है जो रण। देखता मैं ॥ ९३ ॥

अत्यंत करुणाग्रस्त शोकसे बोलने लगा।

अर्जुनने कहा

कृष्ण स्वजन हैं सारे रणमें देख उत्सुक ॥ २८ ॥

होते शिथिल हैं गात्र वैसे ही मुख सूखता।
शरीर कांपता सारा रोम रोम हुये खडे ॥ २९ ॥

छोड़ता हाथ गांडीव जलती है सभी त्वचा।
असह्य है खड़ा होना मन ही भ्रमता सब ॥ ३० ॥

रणमें ये अति उद्यत । लड़ने आये हैं समस्त ।
किन्तु हमें यह उचित । होगा क्या ॥ ९४ ॥

इस लड़ाईके विचारसे । कसमसाता तन मनसे ।
अस्थिर हूं मन औ' बुद्धिसे । इस क्षणमें ॥ ९५ ॥

देखो कांपता है तन । शुष्क हुवा है वदन ।
शिथिल सारे करण । हुये मेरे ॥ ९६ ॥

मन मेरा अति व्यग्र । खडे हैं सारे रोमाग्र ।
गला गांडीव समग्र । हाथ हैं लूले ॥ ९७ ॥

न पकडते वह खिसका । न जानते छूटा है हाथका ।
हृदय हुवा महा-मोहका । घर ही मानो ॥ ९८ ॥

वज्रसे वह कठिण । दुर्धर अति दारुण ।
उससे असाधारण । यह स्नेह ॥ ९९ ॥

जीता जिसने रणमें शिवको । मिटाया है निवात कवचको ।
स्नेहने लपेटा उसी पार्थको । क्षणभरमें यहां ॥ २०० ॥

भेदता रहता भ्रमर जैसे । अति कठिण काष्ठ भी लीलासे ।
फंसता कमल-कलिमें जैसे । अति कोमल ॥ १ ॥

वहां प्राण भी निकल जायेगा । किन्तु न कमल चीरा जायेगा ।
कोमलपन ही कठिण होगा । स्नेहका ऐसा ॥ २ ॥

यह है आदि पुरुषकी माया । ब्रह्मा भी इसे समझ न पाया ।
तभी झुलाया अर्जुनको राया । कहता है संजय ॥ ३ ॥

सुनो फिर वह अर्जुन । देख कर सारे स्वजन ।
भूल गया है अभिमान । युद्धका जो ॥ ४ ॥

न जाने कैसी करुणा । स्पर्शी है अन्तःकरणा ।
तब कहे वह कृष्ण । चलो यहांसे ॥ ५ ॥
मन मेरा अति व्याकुल । कांपता है तन सकल ।
वाचा होती है अनर्गल । इससे मेरी ॥ ६ ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

युद्ध पराङ्मुखता

वध्य हैं यदि कौरवादिक। क्यों न बंधु युधिष्ठिरादिक।
सभी हैं एकसे सगोत्रिक। एकत्र यहां ॥ ७ ॥
लगता तभी मिटा दो रण। नहीं करता है मेरा मन।
यह है सब मूल कारण। महापापका ॥ ८ ॥
देव! कैसे ही देखने पर। लड़ना है बुराईका घर।
न लड़ें यदि हम आखिर। भला है सबका ॥ ९ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥

न चाहूंगा विजय वृत्ति। न चाहूंगा राज्य औ' कीर्ति।
उससे क्या मिलेगी शांति। कह तू यह ॥ १० ॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युध्ये प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥

मार कर इन सबको। भोगना है जिन भोगोंको।
जलने दे उन सबको। कहता अर्जुन ॥ ११ ॥
आने दो कैसी ही स्थिति। सहेंगे विषम विपत्ति।
बुझें न क्यों जीवन-ज्योति। उस पर भी ॥ १२ ॥

कृष्ण मैं देखता सारे सभी अशुभ लक्षण ।
कोयी न दीखता श्रेय यहां स्वजन घातसे ॥ ३१ ॥
न चाहूं जय औ' राज्य वैसे ही सुख भोग भी ।
राज्यमें या भोगमें क्या है जीनेमें भी धरा यहां ॥ ३२ ॥
जिनके हित है सारा राज्य भोग सुखादि जो ।
वेही युद्धार्थ हैं सिद्ध धन प्राणादि त्याग के ॥ ३३ ॥

अपनोंका घात करना। फिर राज्य-सुख भोगना।
मेरा यह सोच सकना। स्वप्नमें भी असंभव ॥ १३ ॥

गुरु जनोंका अहित करना। तो किसके लिये है जनमना।
तथा किसके लिये कह जीना। शत्रुबुध्दिसे ॥ १४ ॥

पुत्रको चाहता है कुल। उसका क्या यही है फल।
गोत्र-जन वध केवल। करना है क्या ॥ १५ ॥

वज्र सम है यह कठोर। कैसा करे इसका उच्चार।
हमें करना मंगल कर। यथा संभव ॥ १६ ॥

हमको है जो जो करना। इन्ही सबको है भोगना।
प्राण निछावर करना। इनके हित ॥ १७ ॥

बनकर विश्वके भूपाल। जीत करके विश्व सकल।
रखना है अपना ही कुल। संतुष्ट सदा ॥ १८ ॥

वही है यहां समस्त। कैसा कर्म विपरीत।
हुए वे सब उद्यत। युध्द करने ॥ १९ ॥

त्यज कर ये परिवार। वैसे ही गृह औ' भांडार।
शस्त्राग्रपे रख तैयार। हुए हैं प्राण ॥ २० ॥

ऐसोंको मैं कैसे मारूं। किन पर शस्त्र धरूं।
अपने हियका करूं। घात कैसा ॥ २१ ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः स्यालाः संबंधिनतस्तथा ॥ ३४

तू न जानता क्या ये हैं कौन। सम्मुख खडे हैं भीष्म द्रोण।
इनके उपकार महान। हैं हमपर ॥ २२ ॥

वैसे साले श्वशुर मातुल। तथा अन्य बंधु हैं सकल।
पुत्र पौत्र हैं अति केवल। आप्त जन सारे ॥ २३ ॥

दादा बाबा पुत्र पौत्र अपने दीखते यहां।
गुरु औ' ससुरा साला सगे स्वजन हैं सभी ॥ ३४ ॥

सुनो हैं ये अतीव निकटके। आप्त जन सब परिवारके।
इन्हे कटु बोलें तभी पापके। भागी हैं हम ॥ २४ ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

चाहे सो इन्हे करने दो। हमको अभी मारने दो।
किंतु मनमें न लाने दो। इनका अहित ॥ २५ ॥

मिले यदि विश्व साम्राज्य। तब भी हमें यह वर्ज्य।
कार्य अनुचित जो त्याज्य। नहीं करुंगा ॥ २६ ॥

निहत्य धार्तराष्ट्रन् नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

यदि आज हम ऐसा करेंगे। कौन हमारा आदर करेंगे।
तेरा दर्शन भी कैसा करेंगे। कह श्रीकृष्ण ॥ २७ ॥

वध करनेसे गोत्र जनोंका। घर बनके महा-पापका।
खोऊंगा मैं तुझको हाथका। जो है अपना ॥ २८ ॥

कुल नाशके पापसे। पूर्णता डूब जानेसे।
देखूंगा मैं तुझे कैसे। इस भांति ॥ २९ ॥

जैसे उद्यानमें अनल। लगा देख अति प्रबल।
क्षण भी न रहे कोयल। स्थिर वैसे ॥ २३० ॥

स-कर्दम सरोवर। देख करके चकोर।
करे उसका अव्हेर। वैसा ही तू ॥ ३१ ॥

अजी ओ मेरे देवराय !। मिटनेसे पुण्य-संचय।
छोड़कर होंग अदृश्य। हमसे तब ॥ ३२ ॥

इन्हे न मारना चाहूँ यदि ये मारते मुझे।
विश्व-साम्राज्य छोड़ूंगा पृथ्वीकी बात क्या भला ॥ ३५ ॥

घातसे कौरवोंका है क्या होगा अपना हित।
भले ये आततायी हैं इनका घात पाप है ॥ ३६ ॥

तस्मान् नार्हा वयं हंतुं धार्तराष्ट्रान् स्वबांधवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः श्याम माधव ॥ ३७ ॥

इसीसे मैं यह नहीं करूंगा । रणमें शस्त्र नहीं उठाऊंगा ।
क्यों कि मुझे यह युध्द प्रसंग । दीखता निंद्य ॥ ३३ ॥

तुझसे ही जब वियोग होगा । भला तब हमारा क्या रहेगा ।
उस दुखसे हृदय फटेगा । तेरे बिन श्रीकृष्ण ॥ ३४ ॥

तब कौरव वध होगा । हमें राज्य–भोग मिलेगा ।
यह सारा अशक्य होगा । कहता है पार्थ ॥ ३५ ॥

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापदस्मान् निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

अभिमान मदसे भूलकर । यदि आये ये रणभूमिपर ।
केसा होगा यहां मंगलकर । यह देखना होगा ॥ ३६ ॥

ऐसा कैसा यह करना । अपनोंको आप मारना ।
जानबूझकर है लेना । विष कालकूट ॥ ३७ ॥

अजी कभी राह चलते । यदि कहींसे सिंह आते ।
उसको टालकर जाते । इसीमें भला है ॥ ३८ ॥

तथैव घात बंधूका हमें योग्य नहीं कभी ।
घातसे स्वजनोंके क्या जीयेंगे सुखसे हम ॥ ३७ ॥

लोभसे नष्ट है बुद्धि जिससे ये न जानते ।
कुलके क्षयका पाप तथा क्या मित्र-द्रोहका ॥ ३८ ॥

पापसे बचना ऐसे न सोचें क्या भला हम ।
कुलक्षय महा-दोष दीखता स्पष्ट ही यहां ॥ ३९ ॥

प्राप्त प्रकाशको छोड़ना । अंधकूपमें फिर जाना ।
उससे है क्या लाभ होना । कहो देव ॥ ३९ ॥

आगको सम्मुख देख कर । गये न उसको लाघकर ।
क्षणमें वह लपटेकर । जला देगा ॥ २४० ॥

वैसे दोष असाधारण । घेरते हैं हमको पूर्ण ।
जानकर भी आचरण । करना कैसे ॥ ४१ ॥

पूछ कर इतना बोले पार्थ । सुनो देव इसका मतितार्थ ।
कहूंगा इस पापका अनर्थ । अब तुझसे ही ॥ ४२ ॥

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नम् अधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

जेसे लकडीका घर्षण । उपजाता अग्नि महान ।
उससे जल जाता इंधन । प्रज्वल होके ॥ ४३ ॥

कुलमें वैसे परस्पर । वध किया तो स-मत्सर ।
उससे महादोष घोर । कुलघातका होगा ॥ ४४ ॥

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषुदुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

इससे है ऐसा पाप । करें कुल-धर्म लोप ।
बढ़ता अधर्म व्याप । कुलमें ही ॥ ४५ ॥

इससे सारासार विचार । किसके कैसे क्या है आचार ।
मिट जाते हैं मूल आधार । विधि-निषेधके ॥ ४६ ॥

कुलके क्षयसे नाश कुल-धर्म सनातन ।
अधर्म फैलता सारा कुलके धर्म-नाशसे ॥ ४० ॥

अधर्म फैल जानेसे भ्रष्ट होती कुल-स्त्रियां ।
स्त्रियोंके भ्रष्ट होनेसे होता है वर्ण-संकर ॥ ४१ ॥

बुझाकर हाथका दीप । तममें चलनेसे आप ।
टकराये अपने आप । स्वाभाविक ॥ ४७ ॥

वैसा कुलक्षय जब होता । कुलमें आद्य-धर्म मिटता ।
कहो तब वहां क्या होता । पापके बिन ॥ ४८ ॥

छूटते हैं तब यम औ' नियम । टूटता मन-इंद्रियोंका संयम ।
घडता है व्यभिचारका कुकर्म । कुलस्त्रियोंसे ॥ ४९ ॥

उत्तममें अधमका संस्कार होता । इस भांति वर्ण अवर्णमें घुलता ।
तब है मूल सहित उखड जाता । संस्कृति धर्म ॥ ५० ॥

जैसे चौराहेके बलि पर । उडते हैं काग चहूं ओर ।
वैसे हैं दोष घुसते घोर । सत्कुलोंमें ॥ ५१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतंति पितरो ह्येषां लुप्त पिंडोदक क्रियाः ॥ ४२ ॥

फिर उस पूर्ण कुलको । तथा उस कुलघातिको ।
नरक मिला दोनोंको । इसको जान ॥ ५२ ॥

वंश विस्तार ही समस्त । होता जाता है जो पतित ।
गिरते पूर्वज स्वर्गस्थ । इससे सभी ॥ ५३ ॥

लोप होते जहां नित्य--कर्म । फिर कैसे नैमित्तिक धर्म ।
कहां रहे तब श्राध्द कर्म । किसके लिये ॥ ५४ ॥

नखाग्रमें डसनेसे साप । शिखाग्रतक विषका व्याप ।
वैसे आब्रह्म डूबता आप । समूचा कुल ॥ ५५ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

इससे नर्कमें जाता कुलघ्नों सह है कुल ।
पितरोंका अधःपात होता है श्राद्ध लोपसे ॥ ४२ ॥

दोषसे है कुलघ्नोंके होता है वर्ण-संकर ।
डूबते जातिके धर्म कुल धर्म सनातन ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुमः ॥ ४४ ॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

सुन प्रभुजी वचन एक । यहां घडता महापातक ।
जिस संग दोषसे लौकिक । पाता है भ्रांति ॥ ५६ ॥

जैसे है अपने घरको । लगी आग सब गांवको ।
निगलती है सर्वस्वको । जला करके ॥ ५७ ॥

वैसे ही उस कुल संगतिसे । दूसरे जनके बरतनेसे ।
उनके ऐसे हीन संसर्गसे । फैलते हैं दोष ॥ ५८ ॥

ऐसे नाना दोषोंका सकल । भांडार होता है ऐसा कुल ।
कहता पार्थ उसे केवल । नरक भोग घोर ॥ ५९ ॥

उस स्थानमें हुआ पतन । न होता कल्पांतमें उत्थान ।
कुलक्षयका पाप महान । अर्जुन कहता ॥ ६० ॥

अजी सुनके यह कानसे । घिन नहीं की तूने चितसे ।
कठोर किया हिय वज्र-से । कृष्ण तूने ॥ ६१ ॥

अपेक्षा है क्यों राज्य औ' सुख । जिसके लिये वह क्षणिक ।
जानकर भी यह ये दोष । नहीं त्यजना क्या ? ॥ ६२ ॥

आये यहां अपने कुलके श्रेष्ठ । हमने देखा शत्रु दृष्टिसे भृष्ट ।
नहीं क्या यह महादोष अनिष्ट । किया हमने ॥ ६३ ॥

जिनके कुलके धर्म डूबते उनको नित ।
होता नरकमें वास सुनते हैं यही हम ॥ ४४ ॥

कैसा यह महापाप करने जा रहे हम ।
मारना स्वजनोंको भी राज्यके सुख लोभसे ॥ ४५ ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शास्त्र शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

इस पर भी क्या है जीना । उससे भला चुप होना ।
शस्त्र छोडकर सहना । इनके तीर ॥ ६५ ॥
इससे जो कुछ होगा । मरनेमें भला होगा ।
यह पाप नहीं होगा । कभी मुझसे ॥ ६६ ॥
ऐसा देखकर सकल । अर्जुनने अपना कुल ।
कहा तब राज्य केवल । है नरकवास ॥ ६७ ॥

संजय उवाच
एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

उस समयमें ऐसे । अर्जुन बोला कृष्णसे ।
संजय कहे राजासे । सुनियेजी ॥ ६८ ॥
अति उद्वेगसे ऐसे फिर । खिन्न मन गद्‌गद होकर ।
क्रुद्ध कर आया पृथ्वी पर । रथसे वह ॥ ६९ ॥
राज कुवर ऐसा पदच्युत । होकर के सर्वथा उपरत ।
या जैसे रवि हो राहुग्रस्त । हुआ हतप्रभ ॥ २७० ॥
अथवा महासिद्धिके भ्रममें । तापस उलझा मोहजालमें ।
तथा फंस कामना भंवरमें । हुआ है दीन ॥ ७१ ॥

इससे तजके शस्त्र रहना शांत होकर ।
मारेंगे फिर शस्त्रोंसे रणमें मुझे कौरव ॥ ४६ ॥

संजयने कहा

रणमें कहके ऐसा शोकाकुल धनंजय ।
डाल कर सभी शस्त्र रथमें बैठ ही गया ॥ ४७ ॥

तैसा वह धनुर्धर। दुःखावेगसे जर्जर।
रथको था जो सुंदर। दिया छोड ॥ ७२ ॥

तथा छोड तीर कमान। करते अश्रुपात नयन।
राजन् सुनो यह कथन। बोला संजय ॥ ७३ ॥

दूसरे अध्यायकी प्रस्तावना —

इस पर वैकुंठ नाथ। देखके खेद-मूर्ती पार्थ।
किस भांतिका परमार्थ। कहेगा भला ॥ ७४ ॥

सविस्तर करेगा वर्णन। सकौतुक कहेगा कथन।
कहेगा ज्ञानदेव वचन। निवृत्तिदास ॥ ७५ ॥

गीता श्लोक ४७
ज्ञानेश्वरी ओवी २४७.

ॐ

२

सांख्य योग

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यम् उवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

अर्जुनकी मनोदशा

संजयने कहा राजासे । पार्थने साश्रु नयनसे ।
अति शोकाकुल होनेसे । किया रुदन ॥ १ ॥

स्वकुल देखकर समस्त । स्नेह उपजा अत्यद्‌भुत ।
उससे द्रवित हुवा चित्त । इस प्रकार ॥ २ ॥

जलमें घुलता जैसे नून । अथवा हिलता वातसे घन ।
ऐसे वह दृढ अन्तःकरण । हुवा द्रवित ॥ ३ ॥

मोहाधीन होनेसे वह ऐसा । दिखाया जैसा मुरझाया-सा ।
कीचमें फंसा हुआ-सा जैसा । राजहंस ॥ ४ ॥

इस भांति वह पांडुकुमार । महामोहमें हो अति जर्जर ।
खड़ा देख उसे श्रीशार्ंगधर । बोले ऐसा ॥ ५ ॥

संजयने कहा

ऐसा जो करुणाग्रस्त अधीर अश्रु-पूरित ।
करता था जभी शोक उससे कृष्णने कहा ॥ १ ॥

भगवान उवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यम् अकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

कृष्ण का उपदेश—

व हरि सोचलो तुम अर्जुन । शोक करने योग्य क्या यह स्थान ।
कौन है क्यों आया है यह जान । औ' करता क्या है ? ॥ ६ ॥

तू हुआ क्या है ? । क्या न्यून आया है ? ।
ा करना क्या है ? । खेद क्यों ? ॥ ७ ॥

ी न सोचना तू असंगत । न छोड़ना कभी धैर्य उदात्त ।
भी तुझसे अ-यशकी बात । कोसों दूर ॥ ८ ॥

ई शौर्य-वृत्तिका स्थान । क्षत्रियोंमें अति महान ।
ते कीर्ति-कथाका गान । त्रिभुवनमें ॥ ९ ॥

र जीता रणमें शिवको । मिटाया निवात कवचोंको ।
ा हराया है गंधर्वोंको । पराक्रमसे ॥ १० ॥

नेसे यह तेरे सम्मुख । दीखते हैं बौने ये तीनों लोक ।
ा है पौरुषका लौकिक । अर्जुन तेरे ॥ ११ ॥

ा तू इस स्थान पर । वीर-वृत्तिको छोड़कर ।
ा-सा अधोमुख होकर । रोता रहा है ॥ १२ ॥

ा विषम वेलामें सूझा पाप यह तुझे ।
सोहता बडोंको जो देता दुष्कीर्ति दुर्गति ॥ २ ॥

हो निर्वीर्य तू पार्थ तुझे न शोभता यह ।
नी दुबली वृत्ति छोडके उठ तू अब ॥ ३ ॥

सोचकर देख तू अर्जुन । किस करुणासे उदासीन ।
कहो अंधेरेमें कैसे भानु । ढका आज ॥ १३ ॥

डरता क्या मेघसे पवन । है क्या अमृतको भी मरण ।
निगलता आगको इंधन । सोचले तू ॥ १४ ॥

या नमकसे क्या पानी पिघलेगा । अन्य स्पर्शसे कालकूट मरेगा ।
अथवा महाशेषको निगलेगा । मंडूक अल्प ॥ १५ ॥

सिंहसे भिडे क्या जंबूक । ऐसा हुवा क्या अलौकिक ।
दिखाया है सच कौतुक । तूने आज ॥ १६ ॥

इसलिये सुन अर्जुन । न होने दो चितको दीन ।
धैर्य दो मनको तत्क्षण । सावध होके ॥ १७ ॥

छोड दो यह अज्ञान । उठालो तीर कमान ।
रणमें किसका कौन । कारुण्य कैसे ॥ १८ ॥

तू है बड़ा जानकार । रणमें दया विचार ।
करना ऐसा अपार । उचित है क्या ॥ १९ ॥

इससे कीर्तिका नाश । परलोक अपयश ।
कहता जगन्निवास । अर्जुनसे ॥ २० ॥

इसीलिये शोक न कर । मनमें तू धीरज धर ।
तज दे तू पांडुकुमार । इस शोकको ॥ २१ ॥

तुझे नहीं यह उचित । इसमें अकीर्ति बहुत ।
अब भी तू अपना हित । सोचले ठीक ॥ २२ ॥

संग्राम समयमें ऐसे । करुणासे हित हो कैसे ।
आप्त हुये क्या ये अभीसे । कहो मुझे ॥ २३ ॥

पहलेसे क्या जानता नहीं । संग्राम है कुल-जनसे ही ।
करता है यह अ-कारण ही । शोक तू पार्थ ॥ २४ ॥

यह संघर्ष नहीं आजका । यह चला है जन्म कालका ।
आज ही क्यों ऐसा करुणाका । पुलक उठा ॥ २५ ॥

ा ही क्या है हुआ ऐसा । आया यह तरस कैसा ।
ुन यह विचित्र-सा । किया अनुचित ॥ २६ ॥

मोहसे ऐसा होगा । नाम जो था वह मिटेगा ।
ोक साथ जायेगा । लौकिकके ॥ २७ ॥

थेलता ऐसी हृदयकी । कारण होगी जो अहितकी ।
ो संग्राममें पतनकी । क्षत्रियोंके ॥ २८ ॥

वह कृपावंत । सिखाता है जो सतत ।
यह पांडुसुत । बोले ऐसा ॥ २९ ॥

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हा वरिसूदन ॥ ४ ॥

अ प्रत्युत्तर—

ुनोजी इतना । कारण नहीं बोलना ।
में ही सोचना । यह युद्ध है क्या ॥ ३० ॥

हीं यह अपराध । करना है कुलका उच्छेद ।
पडा यह प्रमाद । हमको यहां ॥ ३१ ॥

पिताका वंदन । देना उन्हे समाधान ।
करना हनन । उचित है क्या ॥ ३२ ॥

दका करे वंदन । हो सके तो करना पूजन ।
ुनाना निंदा वचन । उचित है क्या ? ॥ ३३ ॥

कुल-गुरु ये ऐसे । वंदनीय हमें नियमसे ।
य भीष्म द्रोण वैसे । सदा सर्वत्र ॥ ३४ ॥

वैर न करता है मन । स्वप्नमें भी यह असंभव जान
करना प्रत्यक्ष हनन । कैसे देव ॥ ३५ ॥

लड़ूं कैसे विरुद्ध भीष्म-द्रोणके
इन्हे बाण हमें ये पूजनीय हैं ॥४॥

अजी जलने दो ऐसा जीवन । सबका हुआ क्या अंत:करण ।
वधमें क्या क्षात्रत्व- अभिमान । गुरुजनोंके ॥ ३६ ॥

पार्थका गुरु है यह द्रोण । दिया धनुर्विद्याका शिक्षण ।
है क्या उसकी यह दक्षिणा । वध करना ॥ ३७ ॥

जिसकी कृपासे मिला वर । उसीसे मनमें अभिचार ।
ऐसा बनुं क्या मैं भस्मासुर । कहता अर्जुन ॥ ३८ ॥

गुरुनहत्वा हि महानुभावान
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।

हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव
भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान ॥ ५ ॥

देव गंभीर होता सागर । वह भी है ऊपर ऊपर ।
न क्षोभता हृदय सागर । द्रोणका कभी ॥ ३९ ॥

अपार यह गगन । उसका भी होगा भान ।
अगाध अति गहन । है द्रोण हृदय ॥ ४० ॥

अमृत भी बिगडेगा । वज्र भी टूट जायेगा ।
किंतु दोष न आयेगा । इनके मनमें ॥ ४१ ॥

ममता होती है माताकी । ख्याति है इस बातकी ।
किंतु मूर्ति है ममताकी । द्रोणाचार्य ॥ ४२ ॥

ये हैं कारुण्यके आगर । सकल गुणोंके सागर ।
विद्या सिंधु हैं ये अपार । कहता पार्थ ॥ ४३ ॥

ऐसे हैं ये महान महत । हमसे हैं अति कृपावंत ।
अब कहो क्या करना घात । असंभव यह ॥ ४४ ॥

न मारके पूज्य आचार्य श्रेष्ठ
जीना भला है भिक्षान्नसे ही ।
हितेच्छुओंके वधसे ये भोग
किस भांति भोगें जो रक्त सिक्त ॥ ५ ॥

ऐसोंको रणमें मारना । फिर राज्य सुख भोगना ।
इसका विचार करना । है असंभव ॥ ४५ ॥

दूभर है राज्य भोग भोगना । इंद्रपद भी ग्रहण करना ।
इससे अधिक भला हैं जीना । भिक्षान्नसे ही ॥ ४६ ॥

न तो देश त्याग कर जाना । गिरी-कंदरामें जा बसना ।
करमें शस्त्र नहीं धरना । इनके सम्मुख ॥ ४७ ॥

पैने शस्त्रोंसे मर्म-स्थान । करना इनका भेदन ।
फिर इनके खूनमें सान । पाना भोगैश्वर्य ॥ ४८ ॥

रक्त सिक्त वे ऐसे । भोग भोगना कैसे ।
न जंचे मुझे ऐसे । वचन तेरे ॥ ४९ ॥

दीन अर्जुनकी अनन्य शरणता—

उस समयमें अर्जुन । कहता है कृष्ण तू सुन ।
किंतु वह न देता कान । सुन करके भी ॥ ५० ॥

यह जानकर चौंका अर्जुन । फिरसे बोला अपना वचन ।
देता नहीं तू देव अवधान । मेरी बात पर ॥ ५१ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

जो विचार मेरे मनमें । बोला मैं वह इस स्थानमें ।
अब है भला जो करनेमें । जाने वह तू ही ॥ ५२ ॥

होगी हमारी जय या उन्हींकी
किसमें भलायी यहीं न जानुं ।
हत्यासे जिनके जीना न चाहूं
वही खडे हैं युद्धार्थ डटके ॥ ६ ॥

किंतु जिनसे बैर करना । मृत्यु सम है यह कल्पना ।
लेकर खडे युद्ध-भावना । वे इस रणमें ॥ ५३ ॥

अब क्या ऐसोंका वध करना । अथवा इन्हे छोड़कर जाना ।
इन दोनोमें हमें क्या करना । यह हम न जानते ॥ ५४ ॥

कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

कौन बात करना यहां उचित । वह विचारही नहीं स्फुरित ।
इस मोहसे ग्रस्त है मम चित्त । अकुलाहटसे ॥ ५५ ॥

आंखों पर जब धुंद पडता । दृष्टिका तेज तब भ्रंश होता ।
पासका भी कछु नहीं दीखता । वस्तुमात्र ॥ ५६ ॥

मेरा ऐसा ही हुआ है । भ्रांतिने मन लीला है ।
निज-हित किसमें है । वही न दीखता ॥ ५७ ॥

देव ! विचार कर देखना । जिसमें हित है वह कहना ।
तू है प्रिय सखा ही अपना । तथा सर्वस्व ॥ ५८ ॥

जैसे तू गुरु बंधु पिता । तू हमारा इष्ट देवता ।
तू ही है रक्षण करता । सदा सर्वत्र ॥ ५९ ॥

कभी शिष्यका अनादर । न होता है गुरुके घर ।
जैसे सरिताको सागर । त्यजे कैसे ॥ ६० ॥

अथवा आपत्यको माता । छोड़ती कर निष्ठुरता ।
किसके बल वह जीता । कह तू कृष्ण ॥ ६१ ॥

दीनातासे नष्ट हुयी स्व-वृत्ति
घिरा मोहसे है स्वधर्म-ज्ञान ।

कैसे मेरा श्रेय होगा कहोजी
पगमें झुका हूं ले शिष्यभाव ॥ ७ ॥

सर्वोपरि तू है देव वैसे । हमारा जीवनाधार जैसे ।
असहमत मेरी बातसे । अब जो कही थी ॥ ६२ ॥
तो करना क्या उचित । यहां है धर्म-सम्मत ।
कहो मुझे तू त्वरित । पुरुषोत्तम ॥ ६३ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्यात्
यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृध्दं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

हरि-कृपाका वर्णन—

देखकर यह कुल सकल । हृदय हुआ है शोक विव्हल ।
सुनकरके वह तेरे बोल । होगा शांत ॥ ६४ ॥
मिलेगा यह पृथ्वीतल । या महेंद्र पद सकल ।
मन है जो मोह विव्हल । शांत न होगा ॥ ६५ ॥
भूना हुआ बीज जैसे । अच्छे खेतमें बोनेसे ।
औ' खाद पानी देनेसे । नहीं अंकुरता ॥ ६६ ॥
यदि आयुष्य मरा हो किसीका । उपयोग न होता औषधका ।
वहां उपाय परमामृतका । एकमात्र ॥ ६७ ॥
वैसे राज्य-भोग समृध्दि । न दें संजीवन जीवबुध्दि ।
अनुगृह ही है कृपानिधि । तव कारुण्यका ॥ ६८ ॥
ऐसा बोला है अर्जुन । जो था मोह-मुक्त क्षण ।
मोह-उर्मिसे तत्क्षण । हुआ व्याप्त ॥ ६९ ॥

यहां मिलेगा बिना शत्रु राज्य
वैसे ही इंद्रासन स्वर्गमें भी ।
तोभी न होगा यह शोक शांत
मेरे सभी इंद्रिय सोखता जो ॥ ८ ॥

मुझे लगता यह नहीं मो-लहर । यह है असंगत कोई अन्य प्रकार ।
इसपर पड़ा काल-सर्पका असर । महामोहके ॥ ७० ॥

मर्म-स्थान जो हृदय कमल । उसपे कारुण्यका तम काल ।
दंश किया है महा-मोह व्याल । चढ़ता विष लहर ॥ ७१ ॥

इसके प्रभावको जानकर । जिसकी कृपादृष्टि ही उतार ।
दौडा है श्रीहरी करुणाकर । सपेरा बनके ॥ ७२ ॥

व्याकुल वह पांडुकुमार । समीप उसके जादूगर ।
रक्षा करेगा वह सत्वर । कृपा-लीलासे ॥ ७३ ॥

इसीलिये वह पार्थ । जो है मोहफणिग्रस्त ।
जानकर यह बात । कही मैंने ॥ ७४ ॥

वहां खड़ाथा धनुर्धर । मोहसे व्याकुल होकर ।
जैसे बादलोंमें भास्कर । निस्तेज होता ॥ ७५ ॥

वैसा खड़ा वह पांडुकुमार । दुःखावेगसे होकर जर्जर ।
जैसे ग्रीष्मकालमें गिरिवर । होता दावानल ग्रस्त ॥ ७६ ॥

इसलिये सहज सुनील । कृपामृतसे जो है सजल ।
अनुकूल हुआ श्रीगोपाल । महामेघ हो ॥ ७७ ॥

द्युति है वहां सुदर्शनकी । झलक वही विद्युल्लताकी ।
सजी हुई गंभीर वाणीकी । गर्जना-सी ॥ ७८ ॥

अब होगी वह वर्षा उदार । शांत होगा अर्जुन गिरिवर ।
फूटेगा ज्ञानका नव अंकुर । उसी स्थानपे ॥ ७९ ॥

सुनो यह कथा गहन । जिससे शांत होता मन ।
ज्ञानदेवका है वचन । जो निवृत्तिदास ॥ ८० ॥

संजय उवाच
एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

ऐसा अर्जुन जो वीर बोलके कृष्णसे यह
अंतमें मैं न जूझूंगा कहके शांत हो गया ॥ ९ ॥

अहंता छेदन—

संजय ऐसा बोला। राजा! अर्जुन बोला।
पुनः हो शोकाकुल। यह बात ॥ ८१ ॥
धनंजय बोला श्रीकृष्णसे। अब न कहो कुछ मुझसे।
न लडूंगा सर्वथा इनसे। निश्चित यह ॥ ८२ ॥
ऐसा कहकर अर्जुन। बैठा रहा हो मौन।
देख कर यह श्रीकृष्ण। हुआ चकित ॥ ८३ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

फिर कहता मन ही मन। क्या करता है यह अर्जुन।
न जानता यह अनजान। क्या करना अब ॥ ८४ ॥
अब होगा कैसे इसको ज्ञान। कैसे आयेगा धीरजका भान।
करता है श्रीकृष्ण अनुमान। मांत्रिकसा ॥ ८५ ॥
अथवा देख असाध्य-व्याधी। अमृत सम दिव्य औषधि।
योजता है वैद्य निरवधि। निदान करके ॥ ८६ ॥
करता श्रीहरि विवेचन। दोनों सेनाओंके मध्यस्थान।
जिससे होगा मुक्त अर्जुन। महामोहसे ॥ ८७ ॥
उस निश्चित हेतुसे। हरिने कहा क्रोधसे।
माताके क्रोधमें जैसे। रहता स्नेह ॥ ८८ ॥
औषधके तीतापनके अंदर। होता है जैसे अमृतका असर।
वह गुण रुपसे ही निरंतर। दीखता वैसे ॥ ८९ ॥
वैसे ऊपरसे कठोर। अंदर जो अति मधुर।
ऐसे वाक्य शार्ंगधर। बोला पार्थसे ॥ ९० ॥

पार्थसे यों हृषीकेश हंसके कहने लगे।
खडा जो शोकमें डूबा वहीं उभय सैन्यमें ॥ १० ॥

भगवान उवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥ ११ ॥

फिर अर्जुनसे कहता है । हमने अचरज देखा है ।
आज तुमने यहां किया है । मेरे समक्ष ॥ ९१ ॥

बनता बड़ा जानकार । न छोड़ता मूर्ख विचार ।
औ' कहता नीति विचार । सिखाना चाहुं ॥ ९२ ॥

जन्मांधका पागलपन । करता है जैसा थैमान ।
वैसा तेरा शयानापन । दौडता चहूं ओर ॥ ९३ ॥

अपनी बात न जानता । तो भी कौरवोंकी सोचता ।
देखकर विस्मय होता । मुझे अतिशय ॥ ९४ ॥

मुझे कह तू जरा अर्जुन । तुझपे है स्थित त्रिभुवन ।
अनादि यह विश्व-निर्माण । असत्य क्या ? ॥ ९५ ॥

सर्व समर्थ है यहां एक । उससे निर्माण होते लोक ।
कहना जगतका तू देख । व्यर्थ है क्या ? ॥ ९६ ॥

औ' ऐसा हुआ है क्या सांप्रत । जन्म मृत्यु तुझसे निर्मित ।
नाश होंगे ये तेरे ही हाथ । तेरे करनेसे ॥ ९७ ॥

भ्रमसे तू अहंकृति मानता । यदि इनका घात न करता ।
तो यह सैन्य क्या अमर होता । चिरजीवि-सा ॥ ९८ ॥

अथवा तू है एक घातक । तथा अन्य सभी हैं मृतक ।
चितमें ऐसा ही भ्रम एक । नहीं आने दे ॥ ९९ ॥

अनादि सिद्ध है यह पूर्ण । होना जाना स्वभाव कारण ।
सोचनेका तुझे क्या कारण । है इसमें ॥ १०० ॥

श्री भगवानने कहा

करता तू वृथा शोक कहता ज्ञान भी फिर ।
ज्ञानी न करता शोक गतागत विचारका ॥ ११ ॥

अज्ञानवश कुछ न जानता। जो सोचना वह नहीं सोचता।
फिर भी बडी नीति है कहता। हमको ही ॥ १ ॥

होते हैं जो विवेकी। न सोचते दोनोंकी।
आना जाना भ्रांतिकी। मानकर ॥ २ ॥

न त्वेवाहं जातु नाऽऽसं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

आत्म लक्ष्य—

कहता हूं बात एक। यहां हम तुम देख।
तथा भूपति अनेक। सारे जन ॥ ३ ॥

नित्य ऐसे ही रहेंगे। या निश्चित क्षय होंगे।
यह भ्रांति छोड देंगे। दोनों व्यर्थ ॥ ४ ॥

यह जन्म तथा नाश। दीखता है भ्रमवश।
तत्वतः है अविनाश। वह वस्तु ॥ ५ ॥

जैसे पवन जल हिलाता। उससे हिलोर जो उठता।
उसको कहें क्या जनमता। कह तू पार्थ ॥ ६ ॥

वायुका वही स्फुरण गया। हिलोर भी वहां बैठगया।
तब कहें क्या है मर गया। सोचकर देख ॥ ७ ॥

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहांतरप्राप्तिः धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

सुनो शरीर है एक। वयसे भेद अनेक।
यह प्रत्यक्ष ही देख। प्रमाण तू ॥ ८ ॥

मैं तू तथैव ये राजे पहले थे सभी यहां।
वैसे ही हम जो सारे होंगे भविष्यमें यहीं ॥ १२ ॥

देहीको देहमें आता बाल्य तारुण्य औ' जरा।
वैसा ही है नया देह न डिगे धीर जो कभी ॥ १३ ॥

होता है प्रथम कौमार्य । बदलाता उसे तारूण्य ।
उससे नहीं होता लय । शरीरका ॥ ९ ॥

इस चैतन्यके भी ऐसे । बदलते शरीर वैसे ।
जो यह जानता है उसे । न मोह न दुःख ॥ १० ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

न जाननेका है यह कारण । जो है इंद्रियोंका आधीनपन ।
वह खींचता है अंतःकरण । इससे है भ्रम ॥ ११ ॥

इंद्रियां विषय सेवन करतीं । जिससे हर्ष शोक हैं उपजातीं ।
तथा अंतरंगको रस है देतीं । संसर्गसे अपने ॥ १२ ॥

विषयोंमें नहीं रहती । सदैव एकसी ही स्थिति ।
कभी दुःखकी है दीखती । कभी सुखकी ॥ १३ ॥

देखो है यह शब्दकी व्याप्ति । कहते हैं निंदा तथा स्तुति ।
उपजाते हर्ष शोक अति । श्रवणद्वारसे ॥ १४ ॥

मृदु और कठिण । स्पर्शके हैं दो गुण ।
त्वचा दे संग कारण । हर्ष शोक ॥ १५ ॥

सुरुप और कुरुप । रुपके हैं ये स्वरूप ।
नेत्रोंसे देते अमाप । सुख औ' दुःख ॥ १६ ॥

सुगंध औ' दुर्गंध । ये हैं गंधके भेद ।
दें विषाद औ' मोद । घ्राणके संग ॥ १७ ॥

ऐसा ही द्विविध रस । उपजाता प्रीति त्रास ।
तभी यह अपभ्रंश । निषय संगका ॥ १८ ॥

होनेसे इंद्रियोंके आधीन । भोगना शीत तथा उष्ण ।
जो हैं सुख दुखके कारण । अपनेको ॥ १९ ॥

शीतोष्ण विषय-स्पर्श फेंकते सुख दुःखमें ।
यही तू झेल ले सारा आते जाते अनित्य ये ॥ १४ ॥

विषयोंके बिना है नहीं । रम्य कछु मिलता नहीं ।
स्वभाव जैसा हुवा यही । इंद्रियोंका ॥ १२० ॥
ये विषय भी हैं कैसे । रोहिणीके जल जैसे ।
स्वप्नके गजराज से । आभास रूप ॥ २१ ॥
अनित्य इन्हे जानकर । इनका कर अनादर ।
कभी इनका नहीं कर । संग तू पार्थ ॥ २२ ॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

विषय ये जिन्हे नहीं जकड़ते । उन्हे सुख दुःख दोनों नहीं होते ।
तथा गर्भवास संग नहीं होते । उनको कभी ॥ २३ ॥
वे हैं नित्य रुप पार्थ । जानो है तुम सर्वथा ।
जो कभी इंद्रियार्थ । हुये नहीं ॥ २४ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

सन्तोंको ही आत्मदर्शनकी शक्यता—

पार्थ अब कुछ एक । कहूंगा सुन तू नेक ।
जिससे तूं परलोक । जानेगा सब ॥ २५ ॥
इस उपाधिमें गुप्त । चैतन्य है सर्वगत ।
वह तत्वज्ञ जो संत । स्वीकारते हैं ॥ २६ ॥
सलीलमें पय जैसे । एक हो रहे हैं वैसे ।
किंतु राज-हंस उसे । जाने भिन्न ॥ २७ ॥

इनकी न चले बात सम जो सुख दुःखमें ।
ऐसा ही धीर होता है मोक्ष लाभार्थ यौग्य जो ॥ १५ ॥

असत्यको न अस्तित्व सत्यका नाश भी नहीं ।
जानते यह तत्वज्ञ दोनोंको इस भांतिसे ॥ ३६ ॥

अथवा है अग्नि मुखसे मल । जलाके करते स्वर्ण निर्मल ।
निकाल लेते उसीको केवल । बुद्धिमान ॥ २८ ॥

अथवा ज्ञान मथनीसे । दधि मथन करनेसे ।
दीखता नवनीत जैसे । अन्तमें जो ॥ २९ ॥

रहता भूसा नाज मिलकर । उसे देखनेसे फटककर ।
नाज रहता है स्वस्थानपर । भूसा उड़ जाता ॥ १३० ॥

सोचनेसे है छूट जाता । प्रपंच यह स्वभावता ।
रहता है तत्व तत्वता । ज्ञानियोंको ॥ ३१ ॥

जिससे अनित्यमें नहीं । आस्तिक्य बुध्दि होती कहीं ।
यह निष्कर्ष दोनोमें ही । देखा है सदा ॥ ३२ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥१७॥

अंतर्यामीका घात नहीं होता–

सरासर विचार कर । जान तू भ्रांति है असार ।
स्वभावसे ही जो है सार । नित्य जान ॥ ३३ ॥

लोकत्रयका है आकार । जिसका है यह विस्तार ।
वहां वर्ण नाम आकार । नहीं चिन्ह ॥ ३४ ॥

वह है सर्वदा सर्वगत । जन्म मरणके है अतीत ।
करनेसे भी उसका घात । कभी होता नहीं ॥ ॥ ३५ ॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥

जिससे है भरा सारा जान तू वह अक्षय ।
नहीं हो सकता नाश उस अव्यय तत्वका ॥ १७ ॥

विनाशी देह हैं सारे सदा ही उसमें कहा ।
नित्य निःसीम है आत्मा इससे जूझ तू यहां ॥ १८ ॥

नष्ट होना शरीरका स्वभाव है–

तथा सारा शरीर जात । स्वभावसे है नाशवंत ।
इसलिये हो युद्धरत । ऊठ अर्जुन ॥ ३६ ॥

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥ १९ ॥

परिवर्तन देहोंका है, बाहरी है –

धर तू देहका अभिमान । शरीरको ही सर्वस्व मान ।
मारता मैं मरते आप्त जन । कह रहा है ॥ ३७ ॥
अर्जुन ! तू यह नहीं जानता । यदि विचार करे तो तत्वता ।
तू नहीं हैं किसीका वधिता । न ये हैं वध्य ॥ ३८ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१ ॥

जैसे स्वप्नका है दृश्य । स्वप्नमें ही है सत्य ।
जगकर देखें तो अदृश्य । वैसे ही ॥ ३९ ॥

कहे जो मारता आत्मा और जो मरता कहे ।
दोनों न जानते तत्व मार या मरता न जो ॥ १९ ॥
न जन्म पाता न कदापि मृत्यु
होता न पीछे न आगे न होगा ।
अजन्म जो नित्य सदा पुराण
देही न मरता नाशे भी देह ॥ २० ॥
जानता जो निर्विकार अनाशी नित्य अव्यय ।
कैसे वह मरता या मारता किसको कब ॥ २१ ॥

जान तू ऐसी है यह माया । भ्रममें तू है व्यर्थ ही गया ।
शस्त्रसे वध किया तो छाया । न टूटता अंग ॥ १४० ॥

अथवा पूर्ण कुंभ उलट । दीखता विंबाकार है टूटा ।
किंतु भानु-बिंब है अटूट । वैसे ही ॥ ४१ ॥

अथवा जैसे मठमें आकाश । मठकृतिसे बना मठाकाश ।
भंगनेसे मठके समावेश । महदाकाशमें ॥ ४२ ॥

लोप होनेसे वैसे शरीरका । नाश न होता कभी स्वरूपका ।
तभी आरोप न कर नाशका । भ्रांतिसे तू ॥ ४३ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृण्हाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्
अन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

जैसे जीर्ण वस्त्रको त्यजते । फिर नवीनको हैं ओढते ।
वैसे देहान्तर स्वीकारते । चैतन्यके ॥ ४४ ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

अच्छाद्योऽयमदाह्योऽयम् अक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

उतारके जर्जर जीर्ण वस्त्र
मनुष्य लेता दुसरे नवीन ।
तथैव तजके शरीर जीर्ण
आत्मा भी लेता दुसरे नवीन ॥ २२ ॥

इसे न चुभते शस्त्र इसे अग्नि न बालता ।
न गलाता इसे पानी इसे वायू न सोखता ॥ २३ ॥

छिदता जलता ना जो गलता सूखता नहीं ।
स्थिर निश्चल है नित्य सर्व-व्यापी सनातन ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

है यह अनादि नित्य सिद्ध । निरुपाधि तथा विशुद्ध ।
इससे शस्त्रादिकोंसे विद्ध । न होता यह ॥ ४५ ॥

प्रलयोदकसे यह न भीगता । अग्निदाह यहां न संभवता ।
महाशोषका प्रभाव न होता । मारुतके ॥ ४६ ॥

अर्जुन यह **है** नित्य । अचल तथा शाश्वत ।
सर्वत्र यह सदोदित । परिपूर्ण होता **है** ॥ ४७ ॥

अजी ! दृष्टिसे तर्ककी । भेंट न होती इसकी ।
ध्यानको इसकी भेंटकी । उत्कंठा **है** ॥ ४८ ॥

मनसे न होता प्राप्त । साधनासे आप्राप्त ।
नि:स्सीम यह पार्थ । पुरुषोत्तम ॥ ४९ ॥

है गुणत्रय रहित । व्यक्तिकेलिये अतीत ।
अनादि औ' अविकृत । स्वरुप इसका ॥ ५० ॥

अर्जुन इसको ऐसे जानना । सकलात्मक रूप ही देखना ।
इससे सहज ही शोक पूर्ण । मिटेगा तेरा ॥ ५१ ॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

यदि तू ऐसा नहीं जानता । अन्तवन्त ही इसे मानता ।
तब भी कहो कैसी **है** चिन्ता । पांडुकुमार ॥ ५२ ॥

जो **है** आदि स्थिति अंत । **है** निरंतर औ' नित ।
प्रवाह **है** अनुस्यूत । गंगा जलका-सा ॥ ५३ ॥

अचिंत्य वह अव्यक्त निर्विकारी कहे सब ।
ऐसी है जानके आत्मा तेरा शोक अकारण ॥ २५ ॥
अथवा देखता तू है जन्म-मृत्यु प्रति-क्षण ।
तो भी तुझे न है कोयी शोकका योग्य कारण ॥ २६ ॥

आदि भी वह अखंड रहता । अन्तमें हैं सागरसे मिलता ।
मध्यमें वह बहता रतता । दीखता वैसे ॥ ५४ ॥

वैसे ही यहां ये तीन । चलते एक समान ।
असंभव है अर्जुन । रोकना इसको ॥ ५५ ॥

इसलिये इस बातका । कारण नहीं शोकका ।
स्वभाव ही है इसका । मूल रूपसे ॥ ५६ ॥

न तो भी सुन अर्जुन । जीव जन्म मरणाधीन ।
देख कर यह कारण । शोक है व्यर्थ ॥ ५७ ॥

इससे यहां कुछ नहीं । शोकका कारण भी कहीं ।
टलता यहां कभी नहीं । जन्म औ' मरण ॥ ५८ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

अजी ! जन्मता जो सो नाशता । नाशता सो है पुनः दीखता ।
जैसे घटिका-यंत्र चलता । वैसे ही पार्थ ॥ ५९ ॥

या उदयास्त जैसे स्वभावसे । अखंडित होते जाते हैं वैसे ।
जन्म-मरण भी विश्वमें वैसे । हैं अनिवार्य ॥ १६० ॥

महाप्रलयके अवसर । होता त्रिभुवनका संहार ।
इसीलिये नहीं परिहार । आदि अन्तका ॥ ६१ ॥

जानकर तू यह मनमें । पडता क्यों व्यर्थ ही दुःखमें ।
जानकर बनता जनमें । पागलका-सा ॥ ६२ ॥

सब ढंगसे पार्थ । शोक है सब व्यर्थ ।
दुःखदायह सर्वथा । नहीं विषय ॥ ६३ ॥

तय है जन्मसे मृत्यु मृत्युसे जन्म निश्चित ।
अटल उसका जो है व्यर्थका शोक है यह ॥ २७ ॥